

देवपूजा के अंग और उनकी अनिवार्यता

- डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़
(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)

प्रस्तावना -

आत्मा का हित सुख प्राप्त करने में है और सुख मोक्ष में है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए दो मार्ग हैं - साक्षात् मार्ग और परम्परा से मार्ग। साक्षात् मार्ग के लिए दिगम्बर मुनि बन अपने कर्मों की सम्पूर्ण निर्जरा करना है और परम्परा से श्रावक के जीवन में छह कर्तव्यों को पालन करतु हुए सन्मार्ग पर चलना ही है। देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान; ये छह श्रावक के कर्तव्य हैं। इनका पालन श्रावक को प्रतिदिन करना आवश्यक है। प्रथम देवपूजा, जो कि वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी गुण से समन्वित जिनेन्द्र भगवान की पूजा है। इस पूजा में सच्ची श्रद्धा और उनके गुणों में प्रीति होना आवश्यक है, तभी वह फलीभूत होती है। इसके अलावा किसी भी कार्य को करने के लिए सबसे अधिक आवश्यक है उसकी विधि का पालन करना। प्रक्रिया का अनुशरण करना। प्रक्रिया समीचीन होना आवश्यक है तभी उसके फल भी उत्तम होंगे। यदि प्रक्रिया दूषित है तो परिणाम भी दूषित होंगे, कहीं न कहीं वे परिणाम दुःखदायी होंगे। हम यहां इसी संदर्भ में चर्चा में कर रहे हैं - देवपूजा के अंग और उनकी अनिवार्यता। देवपूजा के छह अंग हैं - आह्वान, स्थापना, सन्निधिकरण, पूजन, विसर्जन और अभिषेक। इन अंगों की अनिवार्यता क्यों है? इस विषय को विविध प्रमाणों और तर्क की कसौटी के आधार पर सिद्ध करेंगे कि देवपूजा में सभी अंगों का पालन करना आवश्यक क्यों है?

देवपूजा के अंगों के क्रम को इस प्रकार से परिलक्षित किया गया है - अभिषेक, आह्वान, स्थापना, सन्निधिकरण, पूजन, विसर्जन। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया है देवपूजा की। देवपूजा सम्यक् वर्धिनी प्रक्रिया है। यह अनिवार्य भी है और करणीय भी है। यही एक मात्र उपाय है, जो श्रावकों को जिनेन्द्र भगवान की भक्ति कर सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिए प्रेरणीय है। सामान्य से देखा जाए तो प्रत्येक श्रावक उपरोक्त रीति से देवपूजा करके आनंदित होता है, प्रसन्नचित्त होता है, अपने जीवन धन्य मानता है, दिन का प्रारंभ उत्कृष्ट मानता है और धर्म से जुड़े रहने का सबसे महत्वपूर्ण उपक्रम मानता है। आईए! हम समझते हैं देवपूजा के अंगों की अनिवार्यता के विषय में।

देव शब्द का अर्थ देवपूजा से प्रयोजन -

देव शब्द का प्रयोग वीतरागी भगवान् अर्थात् अर्हंत और सिद्ध के लिए तथा देव गति के संसारी जीवों के लिए किया जाता है। अतः कथन के प्रसंग को देखकर देव शब्द का अर्थ करना चाहिए। इनके अतिरिक्त पंच परमेष्ठी, चैत्य, चैत्यालय, शास्त्र तथा तीर्थक्षेत्र ये नौ देवता माने गये हैं। देवगति के देव चार प्रकार के होते हैं—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व स्वर्गवासी। इस लेख में देव शब्द का अभिहित अर्थ जिनेन्द्र भगवान से है क्योंकि पूजा उन्हीं की होती है तो गुणों में सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके समान अन्य कोई गुणवान् नहीं है, जिनके वचन अविरोध को प्राप्त हैं, जो सूक्ष्म, अन्तरित, दूरवर्ती पदार्थों को जानते हैं, जो सभी दोषों से मुक्त हैं, ऐसे ही देव की पूजा की जाती है, और वे देव हैं जिनेन्द्र देव। जिन्हें हम आप्त भी कहा जाता है। आचार्यश्री समन्तभद्रस्वामी जी कहते हैं -

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।

भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् 15।

नियम से वीतराग, सर्वज्ञ और आगम का ईश ही आप्त होता है, निश्चय करके किसी अन्य प्रकार आप्तपना नहीं हो सकता 15।¹

दीव्यति क्रीडति परमानंदे इति देवः, अथवा दीव्यति कर्माणि जेतुमिच्छति इति देवः, वा दीव्यति कोटिसूर्याधिकतेजसा द्योतत इति देवः अर्हन्, वा दीव्यति धर्मव्यवहारं विदधाति देवः, वा दीव्यति लोकालोकं गच्छति जानाति, ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्था इति वचनात्, इति देवः, सिद्धपरमेष्ठी वा दीव्यति स्तौति स्वचिद्रूपमिति देवः सूरिपाठकसाधुरूपस्तम् 1²

देव शब्द 'दिव' धातु से बना है, और 'दिव्' धातु के 'क्रीड़ा करना' 'जय की इच्छा करना' आदि अनेक अर्थ होते हैं। अतः जो परमसुख में क्रीड़ा करता है सो देव है, या जो कर्मों को जीतने की इच्छा करता है वह देव है, अथवा जो करोड़ों सूर्यों के भी अधिक तेज से देदीप्यमान होता है वह देव है जैसे—अर्हंत परमेष्ठी। अथवा जो धर्मयुक्त व्यवहार का विधाता है, वह देव है। अथवा जो लोक अलोक को जानता है, वह देव है जैसे सिद्ध परमेष्ठी। अथवा जो अपने आत्मस्वरूप का स्तवन करता है वह देव है जैसे—आचार्य, उपाध्याय, साधु।

¹ रत्नकरण्डकश्रावकाचार/5

² कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका/1/1/15

देवपूजा से प्रयोजन - जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी है ऐसे देव की पूजा ही देवपूजा है। यह स्पष्ट हो गया है कि देवपूजा का अर्थ स्वर्ग के देवी-देवता नहीं है और न ही प्रकार से माने जाने देव हैं। यह जिनेन्द्र भगवान का मार्ग है, इस मार्ग में जिनेन्द्र देव की ही पूजा होती है। उनके गुणों का गान किया जाता है। इसलिए देवपूजा करने के लिए एक विधि आचार्यों ने कही है। उस विधि का पालन करना आवश्यक है तभी देवपूजा पूर्ण होगी। बिना विधि के कोई कार्य सम्पन्न नहीं होगा, हो भी जायेगा तो उसका फल नहीं मिलेगा। सार्थक फल के लिए सार्थक क्रिया का होना आवश्यक है। जिस प्रकार से मंदिर जाने की विधि है, भोजन बनाने की विधि है, भोजन ग्रहण करने की विधि है, जब इनका अनुशरण होता है तभी जाकर आनंद आता है सुख मिलता है। ऐसी ही देवपूजा में सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक आवश्यक है। इसके पश्चात् आह्वान आदि के माध्यम से विसर्जन तक पहुँचकर पूजा पूर्ण करना भी आवश्यक है, तभी पूर्ण पूजा होगी।

देवपूजा के अंग और उनकी अनिवार्यता -

पूजन का मुख्य उद्देश्य आत्मशुद्धि एवं पूज्य के गुणों को प्राप्त कर, पूज्यता को उपलब्ध होना है। पूजा में प्रत्येक कार्य न केवल शारीरिक और/या मानसिक होता है, बल्कि प्रतीकात्मक, लौकिक और आध्यात्मिक भी होता है। इसके लिए पूजन को विधिपूर्वक करना चाहिए। विधिपूर्वक पूजा करने के लिए देवपूजा के अंगों का परिपालन आवश्यक है। इस संबंध में पंडित सदासुखदास जी कहते हैं -

व्यवहार में पूजन के पाँच अंगनि की प्रवृत्ति देखिये हैं - आह्वानन 1; स्थापना 2; संनिधिकरण 3; पूजन 4; विसर्जन 5।³ पूजा के पांच अंगों में अभिषेक को भी समाहित किया गया। जिससे पूजा के छह अंग माने जाते हैं - अभिषेक, आह्वान, स्थापना, संनिधिकरण, पूजन, विसर्जन। यहाँ हम क्रम से एक-एक अंग के विषय में समझते हैं -

1. अभिषेक - अभि उपसर्ग पूर्वक सिंच धातु से अभिषेक बना है। अभिषेक शब्द का शाब्दिक अर्थ है स्नान। परंतु इसका भावपूर्ण अर्थ है अनुष्ठान स्नान। अभिषेक से तात्पर्य है मूर्ति के औपचारिक स्नान से, प्रतिमा का पवित्र स्नान। न्हवन शब्द का प्रयोग भी आनंदित करता है। स्नान शब्द सामान्य रूप से शरीर की शुद्धि आदि में प्रयोग होता है इसलिए जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक को न्हवन शब्द का प्रयोग अधिक आनंददायी है। शुद्ध प्रासुक जल से न्हवन (स्नानादि) को अभिषेक कहते हैं। जिन्होंने इंद्रियों को जीत लिया है, ऐसे जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक होता है। जिनेन्द्र भगवान में अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी समाहित हैं। शेष तीन परमेष्ठी उस क्रम में अनुगमन कर रहे हैं। ऐसे में, पंच परमेष्ठी में

³ रत्नकरंड श्रावकाचार/पं.सदासुखदास/119/173/15

अभिषेक किसी भी परमेष्ठी का साक्षात् नहीं होता क्योंकि- अरिहंत परमेष्ठी-जिन्हें कोई भी जड़, चेतन पदार्थ स्पर्श नहीं कर सकता अर्थात् समवसरण में भी कमल पर चार अंगुल अधर में रहते हैं। फिर भी अभिषेक जल स्पर्श कैसे करेगा? अर्थात् साक्षात् अरिहंत का अभिषेक नहीं होता। सिद्ध शरीर रहित है। जिसका शरीर नहीं तो फिर अभिषेक कैसे? अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी का भी अभिषेक नहीं होता। आचार्य उपाध्याय साधु स्नान के त्यागी होते हैं उनका भी अभिषेक नहीं होता।

नव देवताओं में पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त जिन चैत्य, जिन चैत्यालय, जिन धर्म और जिनागम भी देवता हैं। अतः धर्म-निराकार और जिनागम शास्त्र हैं। उनका भी अभिषेक नहीं हो सकता। मात्र जिन चैत्य (जिन प्रतिमा) और जिन चैत्यालय, इन दो देवताओं का अभिषेक होता है। जिन चैत्यालय या मंदिर की प्रतिष्ठा के समय जिन चैत्यालय के शिखर के सामने दर्पण रखा जाता है। दर्पण पर शिखर का जो प्रतिबिम्ब बनता है उसका अभिषेक किया जाता है।

अभिषेक को चार भागों में विभाजित किया है -

- जन्माभिषेक
- राज्याभिषेक
- दीक्षाभिषेक
- प्रतिमाभिषेक/जिनबिम्बाभिषेक

उपरोक्त जन्माभिषेक के समय तीर्थंकर बालक अवस्था में रहते हैं अरिहंत अवस्था तो तपकल्याण के बाद चार घातिया कर्म नष्ट करने पर आती है। राज्याभिषेक जब राजा अपने उत्तराधिकारी को राज्य सौंपता है उस समय किया जाता है। दीक्षा अभिषेक तपकल्याण के समय होता है। चौथा अभिषेक है प्रतिमाभिषेक/जिनबिम्बाभिषेक। यह अभिषेक प्रतिमा में तदाकार स्थापना करके अभिषेक की प्रक्रिया की जाती है। जन्माभिषेक सिर्फ तीर्थंकर बालक जन्म के समय होने वाला अभिषेक है। जिनबिम्ब और जन्माभिषेक में काफी अंतर है। जन्माभिषेक तीर्थंकर के 'जन्म कल्याण' के समय इन्द्रादि द्वारा सम्पन्न की गई एक क्रिया है ओर जिन बिम्ब अभिषेक पांचों कल्याणक सम्पन्न होने के उपरांत जिन प्रतिमा के न्हवन की मनुष्यों द्वारा प्रतिदिन की जाने वाली क्रिया है। जिस प्रतिमा के हमने पांचों कल्याणक सम्पन्न करा दिए हैं। अर्थात् पूर्ण वीतरागी जिसे बना दिया है उसका जन्माभिषेक कैसे कर सकते हैं? क्योंकि जन्माभिषेक तो सराग अवस्था की क्रिया है। वीतराग अवस्था के उपरांत जन्माभिषेक जैसी सराग क्रिया नहीं होती। अतः जिन बिम्ब अभिषेक जन्माभिषेक नहीं है।

अभिषेक चल (अस्थिर) और अचल (स्थिर) दोनों प्रतिमाओं का होता है। अचल प्रतिमा को वेदी से स्थानान्तरित नहीं करते हैं, उनका अभिषेक वेदी पर ही किया जाता है।

साक्षात् अरिहंत भगवान् जीवों के शुभोपयोग में उत्पन्न कराने में जिस प्रकार कारण होते हैं उसी प्रकार प्रतिमा भी शुभोपयोग कराने में कारण होती है। प्रतिमा को देखकर अरिहंत देव भावों में विराजमान होते हैं। जैसे अपने पुत्र के समान ही दूसरे के सुंदर पुत्र को देखकर अपने पुत्र की याद आ जाती है, उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा देखने से जिनेन्द्र के गुणों का स्मरण हो जाता है; जिससे अशुभ कर्म संवरण को प्राप्त होते हैं। इसलिए जिन प्रतिमा भी अभिषेक पूजन के योग्य है।

जिस प्रकार कैमरे की रील में तब तस्वीर बनती है जब सामने कोई दृश्य होता है। बिना दृश्य के जैसे रील पर तस्वीर नहीं बनती उसी प्रकार बिना प्रतिमा के दर्शन के भावों में देव का निवास नहीं होता है।

अभिषेक की प्रक्रिया में वेशभूषा का महत्व - अभिषेक करने वाले की वेश-भूषा इन्द्र के समान होनी चाहिए। जिस प्रकार इन्द्र मुकुट, कुण्डल, हार, बाजूबंद, तिलक, कंकण, मुद्रिका, करधनी, यज्ञोपवीत, घुंघरू, धोती, दुपट्टे आदि से सुशोभित होकर जिनेन्द्र का अभिषेक पूजन करता है। उसी प्रकार मनुष्य को भी अलंकृत होकर अभिषेक पूजन करना चाहिए।

इन्द्र का पद क्षायिक सम्यग्दृष्टि का पद होता है जो नियम से मुक्ति (मोक्ष) प्रदान कराने में कारण होता है और वह इन्द्र का पद एकमात्र जिनेन्द्र का पूजन, अर्चना का फल है अर्थात् जिनेन्द्र भगवान की एकमात्र पूजन परम्परा से मोक्ष प्रदान करने वाली हैं इस दुष्काल में साक्षात् मुक्ति तो नहीं हां स्वर्गादिकीसे सुख के उपरांत मुक्ति मिल सकती हैं इसलिए इन्द्र के क्षायिक सम्यक्त्व की भावना को लेकर इन्द्र की कल्पना की जाती हैं।

अखण्ड वस्त्रों को पहनकर ही भगवान का अभिषेक और पूजा की जाना चाहिए। जिसमें किसी भी प्रकार की सिलाई या टांका न लगा हो। ऐसे वस्त्र अखण्ड हैं।

प्रश्न- अभिषेक और प्रक्षाल में क्या अंतर है?

उत्तर- अभिषेक-जिन प्रतिमा का शीर्ष भाग (सिर) से सुगंधित जल आदि से न्हवन करना अभिषेक है।

प्रक्षाल-जिनेन्द्र भगवान के चरणों में जल धारा आदि छोड़कर चरण पखारना प्रक्षाल है। प्रतिमा का गीले कपड़े से परिमार्जन करना भी प्रक्षाल है। जैसे प्रतिदिन गोम्मटेश्वर बाहुबली के चरणों में प्रक्षाल होता है। अभिषेक तो बारह साल बाद होता है।

केवलज्ञान की साक्षात्पूजा विषै न्होन नाहीं, प्रतिमा की पूजा न्हवन पूर्वक ही कही है।⁴

अभिषेक करते समय ध्यान देने योग्य बातें -

- अष्टद्रव्य जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल की थाली अभिषेक की क्रिया के पूर्व ही तैयार कर लेना चाहिए।
- शुद्ध-धोती दुपट्टा पहनें।
- अभिषेक करने वाले की उम्र आठ वर्ष से कम न हो।
- अभिषेक करते समय नाक, कान, मुंह आदि में अंगुली न डाले। नाभि के नीचे का भाग स्पर्श न करें।
- सर्दी, जुकाम, बुखार, चर्मरोग, सफेद दाग, खुजली, दाद, चोट लगने पर खून, पीव, मवाद आदि निकलने पर अभिषेक न करें।
- अभिषेक करते समय जिन प्रतिमा का स्थान नाभि से ऊंचा होना चाहिए।
- अभिषेक करते समय सिर पर दुपट्टा डाल लेना चाहिए।
- अभिषेक करने हेतु वेदी से प्रतिमा जी निकालते समय प्रतिमा जी की गर्दन, कमर, पेट एक हाथ आदि अंग पकड़कर नहीं उठाना चाहिए। इससे असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है। प्रतिमा जी को विनयपूर्वक अपने दोनों हाथों से एक हाथ भगवान के पद्मासन पर और एक हाथ भगवान की पीठ पर रखकर प्रतिमा जी को सिर पर रखकर अभिषेक के सिंहासन पर विराजमान करना चाहिए।
- जिन प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ाने के उपरांत ही वेदी से उठाना चाहिए एवं पुनः वेदी पर विराजमान करने के पूर्व ही अर्घ्य चढ़ाना चाहिए।
- अभिषेक करने वाले के वस्त्र धोती, दुपट्टा गृह कार्य में उपयोग न हुए हो, दूसरों के उतारे हुए वस्त्रों से या अकेले एक धोती मात्र से ही अभिषेक नहीं करना चाहिए। कम-से-कम दो वस्त्र धोती, दुपट्टा होना चाहिए।

⁴ चर्चा समाधान/शंका नं. 73

- अभिषेक की क्रिया के समय सार्वजनिक रूप से किसी को टोका-टोकी नहीं करना चाहिए।

2. आह्वान - देवपूजा का द्वितीय अंग आह्वान है। आह्वान शब्द की व्युत्पत्ति है - आ+हु+ल्युट्, आ उपसर्ग पूर्वक हु धातु से ल्युट् प्रत्यय होने पर आह्वान बनता है। जिसका अर्थ है - बुलाना, पुकारना, चुनौती, यज्ञ, आहुति देने योग्य आदि। यहाँ आह्वान का अभिहित अर्थ है - आमंत्रण। पूजा के निमित्त इष्ट देवता को प्रतीक रूप में बुलाना आह्वान कहलाता है। आह्वान करते समय निम्न मंत्र बोलकर पूजन करते हैं -

“ओं ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् ॥”

- अत्र-यहां , अवतर-आएं, पधारें, अवतरित हों।
- संवौषट्-आकर्षक रूप शब्द है। अर्थात् हे जिनेन्द्र! यहां (हृदय में) आएं, पधारें।

मंत्र का प्रयोग करते हैं एवं देव -शास्त्र-गुरु के अलावा अन्य तीर्थंकर, गुरु, शास्त्र जिसका भी पूजन करें, उस समय देव-शास्त्र-गुरु के स्थान पर उनका नाम रखते हैं। मंत्र में ये सभी नाम प्रथमा विभक्ति संबोधन में ही आते हैं। क्योंकि इससे सुस्पष्ट हो जाता है कि हे जिनेन्द्र देव! यहाँ आईए! आईए! हृदय में पधारें!

अब यहां प्रश्न उठता है कि भगवज्जिनेन्द्र जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है , वे कैसे आयेंगे ? इसमें तो दोष आ जाएगा। तब कहते हैं - ऐसा नहीं है; भगवान तो मोक्ष से नहीं आते हैं परंतु पूजक अपनी भावना के माध्यम से उन्हें आमंत्रित करता है, ताकि मन एकाग्र हो सके। मन भटकने न पावे। उसे भय रहे कि भगवान साक्षात् विराजमान हैं। जिससे वह दृढ़ता के साथ अपनी भावनाओं को एकाग्रकर जिनेन्द्र भगवान की आराधना कर सके।

आह्वान करते समय पूजक को अपने भावों के माध्यम से जिनेन्द्र भगवान को बुलाना चाहिए कि हे जिनेन्द्र! आओ और मेरे हृदय रूपी मंदिर में पधारो। ताकि मेरा हृदय पवित्र हो जाए और मेरा तन मेरा मंदिर बन जाए।

हम अपने व्यवहारिक जीवन में देखते हैं कि हमारे साथ समस्या उत्पन्न होने पर अपने इष्ट जनों का स्मरण करते हैं और कहते हैं कि उनका आशीर्वाद मेरे साथ, वे मेरे हृदय में वास करते हैं सब ठीक हो जायेगा। तब प्रतीक रूप में हम भगवज्जिनेन्द्र को आमंत्रित करते हैं तो इसमें कहीं कोई विसंगति नहीं है।

3. **स्थापना** - स्थापना शब्द ठा धातु बना है। पूजन करते समय जिन पूज्य आत्माओं का आह्वान किया है उन्हें सम्मान सहित हृदय रूपी सिंहासन पर स्थापित करना या बिठाना स्थापना कहलाती है। स्थापना करते समय निम्न मंत्र का उच्चारण करते हैं -

ओं ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

- तिष्ठ तिष्ठ - ठहरें, रुके रहें।
- ठः ठः- बैठे, विराजमान हों।
- स्थापनम्-स्थापित हों।
- हे देव-शास्त्र-गुरु! आप मेरे हृदय स्थल पर ठहरें, रुके रहें।

स्थापना करते समय मन में यही भाव होने चाहिए कि हे जिनेन्द्र! आप मेरे हृदय रूपी सिंहासन पर ठहरें, रुके रहें, हमेशा के लिए विराजमान हो जाएं।

स्थापना के पक्षपाती स्थापना बिना प्रतिमा का पूजन नहीं करें। बहुरि जो पीत तंदुलनिकी अतदाकार स्थापना ही पूज्य है तो तिन पक्षपातीनिके धातु पाषाण का तदाकार प्रतिबिंब स्थापन करना व्यर्थ है तथा अकृत्रिम चैत्यालय के प्रतिबिंब अनादि निधन है जिनमें हू पूज्यपना नहीं रहा।⁵

4. **सन्निधिकरण** - जिन प्रतिमा के सम्मुख निकट होने को सन्निधिकरण कहते हैं। सन्निधिकरण करते समय निम्न मंत्र बोलते हैं -

ओं ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो सन्निधिकरणम्।

- सन्निहितः - एक साथ, निकटस्थ, समीपस्थ, सामीप्य आदि।
- सन्निधिकरणम् - समीपता, आकर्षण या पास लाने वाला, घनिष्ठता, पास रखने वाला।
- हे देवशास्त्रगुरु! यहां मेरे निकट आपकी समीपता हो, घनिष्ठता, सदा निकट बनें रहे।

सन्निधिकरण करते समय भाव होने चाहिए कि हे जिनेन्द्र! मैं आपके बिल्कुल निकट होने की भावना करता हूँ। जब तक मुझे इस संसार से मुक्ति न हो तब तक आप मेरे और मैं आपके निकट रहूँ

⁵ रत्नकरंड श्रावकाचार/ पं. सदासुख दास/119/172/21

क्योंकि आपके निकट रहने से मैं अपने-आपको संसार से बिल्कुल अलग पाता हूं और देव-शास्त्र-गुरु निकट हो तो मन-वचन-कर्म की चंचलता मिटने लगती है।

आह्वान आदि कैसे करें? - इस प्रक्रिया को करने के लिए विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। मैं इन मतों की चर्चा न करके इस संबंध में यही स्पष्ट रूप से कहूंगा मूल में तो अपने भावों का ही अवलम्बन लेना है। भावों को लगाने के लिए लौंग या पुष्प के माध्यम से आह्वान, स्थापना और सन्निधिकरण करना चाहिए। इस विषय में दो मत स्पष्टतया प्रतीत होते हैं -

प्रथम - आह्वान करते समय दोनों हथेलियाँ जोड़कर भगवान को आमंत्रित करना चाहिए। स्थापना करते समय दोनों हथेलियों को उल्टा करके ठोना पर स्थापना की मुद्रा बनाना चाहिए। सन्निधिकरण करते हुए दोनों हथेलियों की मुट्ठी बनाकर अंगूठा हृदय की ओर कर और हृदय से स्पर्श कराना चाहिए। तत्पश्चात् जितने चावल या लवंग हाथ में आए उतने चढ़ाना चाहिए। इसके लिए तीन, नौ आदि की संख्या का कोई निर्धारण नहीं है।

दूसरा - पूरी प्रक्रिया यथावत् है। बस इस मत में कहना है कि हम भगवान को खाली हाथ आमंत्रित कैसे कर सकते हैं? इसलिए जब भी आमंत्रित करें तब अपने हाथों में पुष्प या लवंग लेना चाहिए।

चावल और लवंग की गिनती के संबंध में - ठोना (यह एक प्रकार का आह्वान स्थापना आदि करने का पात्र होता है, जो पूजन के अन्य सभी पात्रों से ऊंचा होता है।) पर जब हम पुष्प के रूप में पीले चावल या लवंग चढ़ाने को उद्यत होते हैं इस संबंध में कई मत सामने उभरकर आते हैं।

- कोई कहता है कि तीन चावल या लवंग चढ़ाना चाहिए।
- कोई कहता है कि नौ चावल या लवंग चढ़ाना चाहिए।
- कोई कहता है जितने हाथ में आ जाए, उतने चढ़ाना चाहिए।
- किसी का कहना है कि चावल साबुत होना चाहिए, टूटे हुए न हो और लवंग फूल वाली ही होना चाहिए।
- किसी का कहना है कि इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है जो आपके हाथ सामग्री उसे शोधकर चढ़ाना चाहिए।

उपरोक्त विभिन्न मत हैं, इसके अलावा भी अनेक मत हैं। परंतु ध्यान रखने योग्य एक ही बात है कि मूल में भावों की प्रधानता है, यदि क्रिया के कारण या इसी ऊहापोह में तीन या नौ, इसमें भाव बिगड़ते हैं तो पूजा के फल में संदेह होगा।

भावनिके जोड़ के अर्थि आह्वाननादिक में पुष्प क्षेपण करिये है, पुष्पनि कूँ प्रतिमा नहीं जानै। ए तो आह्वाननादिकनिका संकल्पतै पुष्पांजलि क्षेपण करिये है। पूजन में पाठ रच्या होय तो स्थापना कर ले नहीं होय तो नहीं करै। अनेकांतिनिकै सर्वथा पक्ष नहीं।⁶

मेरा व्यक्तिगत अभिमत - पूजन विशुद्ध रूप से सम्यक्त्व वर्धिनी क्रिया है। इसे प्रमाद रहित होकर, शुद्धि पूर्वक, भावों की निर्मलता के साथ, शास्त्रों में कहीं की विधि के साथ ही करना चाहिए। कुछ विषय ऐसे हैं जिनके शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है, इस संबंध में स्वविवेक और भावों की निर्मलता को ध्यान में रखते हुए प्रयोग करना चाहिए। जैसे - चावल या लवंग तीन या नौ या जो थोड़े हाथ में वह; मेरा मानना है अत्यंत सहजता के साथ जो आपको इसमें रुचे उसे करना चाहिए, बस भावों की निर्मलता महत्वपूर्ण है।

यद्यपि मूल में देखा जाए तो परमात्मा सिद्ध लोक में विराजमान है। वीतराग भगवान का आह्वान, स्थापना आदि करने से वे नीचे नहीं आते। अतः तार्किक दृष्टि से विचार करने पर इन सबका कोई औचित्य नहीं है। परंतु भक्ति-भावना के स्तर का यह तथ्य व्यवहार रूप में परम सत्य है पूजन का सम्बंध भावों से है। पूजा करते समय भक्त के मन में भगवान के प्रति सहज ही भाव दशा बन जाती है। भावुकतावश वह सोचता है कि मानो मेरे भगवान मेरे सामने खड़े हों। अतः आह्वान आदि द्वारा भगवान को बुलाना, सम्मान देना, निकट रखना, यह सहज प्रक्रिया है। चूंकि भक्ति भावों का विषय है ठोना में पुष्पों का क्षेपण, तो पुष्पांजलि सम्मान हेतु समर्पित करना है।

5. पूजन - पूजन का मुख्य उद्देश्य आत्मशुद्धि एवं पूज्य के गुणों को प्राप्त कर, पूज्यता को उपलब्ध होना है। पूजन मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है- (1) द्रव्य पूजन (2) भाव पूजन। जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल आदि अष्ट द्रव्य चढ़ा कर भगवान का गुणानुवाद करना द्रव्य पूजन है। अष्ट द्रव्य के बिना मन के जिनेन्द्र भगवान के स्तवन, स्तोत्र, भजन, कीर्तन, ध्यान आदि से गुणगान करना भाव पूजन है। इस संबंध में अनेक भ्रम हैं जो धुली हुई सामग्री से करता है उसे द्रव्यपूजा कहते हैं और जो बिना धुली सामग्री या धोती दुपट्टा के बिना करते हैं उसे भावपूजा कहते हैं, ऐसा मानना बिल्कुल गलत है। द्रव्य पूजन करने का अधिकारी श्रावक है, गृहस्थ है (द्रव्य पूजन में भी भावों की मुख्यता है)। भाव पूजन करने का अधिकारी श्रमण (साधु) है। जिनागम में पूजन के पांच प्रकार हैं- (1) नित्यमह पूजन (2) सर्वतोभद्र पूजन (3) कल्पदुरम पूजन (4) अष्टान्हिका पूजन (5) इन्द्रध्वज पूजन।

⁶ रत्नकरंड श्रावकाचार/ पं. सदासुख/119/173/24

प्रश्न- अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजन करते समय जल क्यों चढ़ाया जाता है ?

उत्तर- प्राकृत भाषा में जल को अप भी कहते हैं और 'अप' से ही अप्पा शब्द बना है। अप्पा का अर्थ आत्मा होता है। जल आत्मा का प्रतीक है। जिस प्रकार जल का कोई निश्चित आकार या रंग नहीं है। वैसे ही आत्मा का निश्चित आकार या रंग नहीं है। मात्र पदार्थों से सम्बंध बनाने के कारण आत्मा, देव, नारकी, तिर्यच मनुष्य की आकृति को धारण कर रही है। हे भगवान्! मेरी आत्मा का स्वभाव जल के समान निर्मल है। मैं अपने स्वभाव में आ जाऊं इस भावना के साथ जल चढ़ाते हैं। अपने स्वभाव में आना ही जन्म, जरा, मृत्यु का नाश करना है। जल समर्पण भाव का प्रतीक है। जिस तरह से जल समर्पित हो नीचे की ओर बहता है और सागर में मिल जाता है उसी प्रकार मैं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति समर्पित हो विराट परमात्मा के सागर में मिल सकूँ।

प्रश्न -पूजन में चंदन क्यों चढ़ाते हैं ?

उत्तर- चंदन की अपनी विशेषता होती है कि वह सांप के लिपटे रहने पर विषमय नहीं होता अर्थात् अपनी सुगंध और शीतलता नहीं छोड़ता। वैसे ही हे परमात्मा! संसार के बीच रहकर भी मैं संसारी न बन सकूँ। अपने लक्ष्य को बनाए रखूँ क्योंकि लक्ष्य बना रहा तो संसार की तपन एक दिन शीतलता में परिवर्तित हो जाएगी।

प्रश्न- पूजन में अक्षत (चावल) क्यों चढ़ाए जाते हैं ?

उत्तर- अक्षत हमारे यहां बहुत श्रेष्ठ द्रव्य माना गया है। अक्षत के ऊपर का जो छिलका होता है, बिल्कुल बाहर-ही-बाहर होता है। अंदर जो भी है वह बिल्कुल वीतराग है, नग्न है, निग्रन्थ है, और भेद विज्ञान का प्रतीक है। जैसे हम यदि धान बो देते हैं तो वह पुनः उग आता है परंतु अक्षत (चावल) बोएं तो वह नहीं उगता। अर्थात् अक्षत के ऊपर से जिस तरह छिलका हटने से अक्षत यानि जन्म-मरण रहित हो गया, उसी तरह मेरी शुभ्र धवल आत्मा अक्षय हो जाये। इसी भावना से अक्षत चढ़ाते हैं। चावल के ऊपर जो धान का छिलका है वह घातिया कर्म का प्रतीक है एवं धान के छिलके के अंदर चावल में जो गुलाबी रंग की पर्त (अशुद्धि) है वह अघातिया कर्म का प्रतीक है। अर्थात् मेरी आत्मा में भी इसी तरह घाति-अघाति कर्म लगे हैं। हे प्रभु! मैं चावल की भांति शुद्ध धवल अर्थात् अष्ट कर्मों की कालिमा से रहित होना चाहता हूँ। जिससे मेरी आत्मा शुद्ध हो जाए इस भावना से भी चावल चढ़ाये जाते हैं।

प्रश्न- पूजन में पुष्प क्यों चढ़ाते हैं ?

उत्तर- फूल चूंकि मोह वर्धक हैं, कामदेव को भी पुष्प प्रिय होता है। पुष्प में जितना आकर्षण होता है उतना आकर्षण शायद ही कहीं पाया जाता हो। शादी में फूलों की माला और फूलों की सेज पर संसारी प्राणी मोह में फंस जाता है। भौरा, तितली, आदि भी आकर्षित होकर मृत्यु को उपलब्ध हो जाते हैं। आकर्षण होने के कारण भगवान के सान्निध्य में पूजन के समय पुष्प चढ़ाकर विनती करता है कि हे भगवान! आपने मोह का नाश कर दिया है, काम जीत लिया है इसलिए मैं काम भाव को नष्ट करने के लिए पुष्प चढ़ा रहा हूं। अर्थात् फूल को आकर्षण रूप (काम रूप) माना है। आपके समान मैं भी काम को जीत सकूं। अर्थात् काम भाव से मुक्त होने के लिए पुष्प चढ़ाये जाते हैं।

प्रश्न- पूजन में नैवेद्य क्यों चढ़ाते हैं ?

उत्तर- दुनिया में केवल एक जिनेन्द्र भगवान ही ऐसे हैं जिन्होंने क्षुधा रोग को नष्ट कर दिया है। नैवेद्य चढ़ाते समय पूजक यह भाव रखता है कि हे जिनेन्द्र! आप तो अपनी आत्मा के रस का निर्बाध रूप से पान कर रहे हैं और हमें यह तुच्छ भोजन मिलता है। हे भगवान! ये भोजन आपके चरणों में समर्पित कर रहा हूं क्योंकि इससे मेरी तृप्ति नहीं होती है। मुझे तो आपके ही समान अमृत आत्म रस की प्राप्ति हो जिसमें हमेशा के लिए भूख नष्ट हो जायें। इस भाव के साथ नैवेद्य चढ़ाते हैं।

प्रश्न- पूजन में दीपक क्यों चढ़ाते हैं ?

उत्तर- दीपक की अपनी दो विशेषताएं हैं-पहली स्वपर प्रकाशक और दूसरी उसकी लौ की ऊर्ध्वगति होती है। दीपक चढ़ाते समय मेरा यह भाव रहना चाहिए कि हे जिनेन्द्र! जब भौतिक दीपक में इतनी शक्ति है कि वह अंधकार को नष्ट कर देता है, तब केवल ज्ञान के दीप के प्रज्वलित होने से कितना मोहरूपी अंधकार नष्ट होता होगा, वह वर्णनातीत है। और जिस प्रकार दीप की लौ से पतंगा मोह करता है तो मृत्यु को प्राप्त होता है, उसी प्रकार मेरी आत्मा भी पदार्थों से मोह करके जन्म-मरण को प्राप्त हो रही है। ज्ञान दीप ही उस मोह को नष्ट कर सकता है। जब ज्ञान का दीप प्रज्वलित हो जाता है तो आत्मा दीपक की लौ की भांति ऊर्ध्वगमन करने लगती है। लौ मुक्ति की ओर संकेत करती है। इसी भावना के साथ दीप चढ़ाया जाता है कि जिनेन्द्र! मेरी आत्मा भी केवल ज्ञान रूपी दीपक से स्वपर प्रकाशक हो एवं अपने शाश्वत मुक्ति धाम की ओर ऊपर चले।

प्रश्न- पूजन में धूप क्यों चढ़ाते हैं ?

उत्तर- जिस प्रकार अग्नि में स्वर्ण की सारी अशुद्धियां जल जाती हैं, उसी प्रकार ध्यान रूपी अग्नि में भी, हे जिनेन्द्र! आपने कर्म रूपी कालिमा (अशुद्धि) को होम करके भस्म कर दिया है। वही ध्यानाग्नि मेरी अंदर भी प्रज्वलित हो जाए। जिससे मैं अपने अष्ट कर्मों की आहुति देकर आप सम बन जाऊं अर्थात् धूप अष्ट कर्मों का प्रतीक है और अग्नि ध्यान का प्रतीक है। अतः पूजन में धूप चढ़ाई जाती है।

प्रश्न- पूजन में फल क्यों चढ़ाते हैं ?

उत्तर- हे जिनेन्द्र! मैंने जो आपका पूजन किया है, उसका मैं यही फल चाहता हूं कि मुझे आपके समान मुक्ति प्राप्त हो जाए। क्योंकि संसार के सारे पदार्थ मैंने भोग लिए हैं। उनसे आज तक मुझे शाश्वत सुख की प्राप्ति नहीं हो पाई है। अतः मैं सांसारिक विभूति की प्राप्ति के उद्देश्य से आपकी पूजन नहीं कर रहा हूं। मैं तो आपको उत्तम फल (सर्वोत्तम मोक्ष फल) की प्राप्ति हेतु फल चढ़ा रहा हूं।

प्रश्न- पूजन में अर्घ्य क्यों चढ़ाते हैं ?

उत्तर- अष्ट द्रव्य से पूजन करने का परिणाम अनर्घ्य पद की प्राप्ति हो, क्षण भंगुर पदार्थों से छूटकर आत्मा में लीन हो मुक्त हो जाऊं जिससे वह अमूल्य अनर्घ्य पद मुझे प्राप्त हो सके, और अर्घ्य चढ़ाने का एक और कारण है कि समयाभाव के कारण यदि अष्ट द्रव्य न चढ़ा पाएं तो, अर्घ्य चढ़ाने में भी पूजा का फल प्राप्त हो जाता है। पर समयाभाव के समय ही अकेला अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। हर समय नहीं। उसे परम्परा नहीं बनाना चाहिए।

दो शब्द हैं - अर्घ्य और अर्घ। अर्घ्य का तात्पर्य है -जलादि द्रव्यों को समूह/जलादि द्रव्य। अर्घ का तात्पर्य है मूल्य। इसलिए जब भी हम आठ द्रव्य समर्पित करके अर्घ्य समर्पित करते हैं तो उस समय हमें निम्न ध्यान रखना है -

- ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। - यह सही मंत्र है।
- ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा। - यह मंत्र गलत है।

प्रश्न- जयमाला क्या होती है ?

उत्तर- पूजन के अंत में पूजा की विषय वस्तु को सार रूप में प्रस्तुत करने वाला गेय भाग अर्थात् काव्य रूप में जिनेन्द्र की महिमा, गुण, अतिशय आदि का वर्णन जिसमें होता है वह जयमाला कहलाती है।

प्रश्न-पुष्पांजलि किसे कहते हैं ?

उत्तर- पूजन के अंत में पुष्पों को अंजलि में भरकर बरसाया जाता है, उसे पुष्पांजलि कहते हैं। भगवान के सम्मानार्थ पुष्पांजलि क्षेपण की जाती है।

6. विसर्जन - विसर्जन का अर्थ है समाप्ति। यहां हम प्रकरण से समाप्ति के साथ-साथ हम अभिहित रूप से उपसंहार भी अर्थ ग्रहण करेंगे। यह पूजा का उपसंहार होता है। विसर्जन में भगवान का विसर्जन या विदाई नहीं होती, अपितु पूजन का विसर्जन है, जो पूजन हमने की है उसका उपसंहार या तात्कालिक समाप्ति को विसर्जन कहते हैं, जो भगवान आए थे ठोने में पुष्प बनकर उन्हें विदाई देते हैं जबकि ऐसा नहीं है। भगवान को तो भावों में आमंत्रित करते हैं, ठोना में तो उनके सम्मानार्थ पुष्प चढ़ाए जाते हैं, पुष्प भगवान नहीं है।

विसर्जन की क्रिया के संबंध में मतों की संख्या बहुत अधिक हैं। यहां कुछ चर्चा करते हैं -

विसर्जन के लिए दोहावली या संस्कृत श्लोक सुनिश्चित हैं, वे हम पढ़ते हैं। परंतु इस दोहावली के समाप्त होने कुछ भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं -

- प्रथम कथन है

आए जो जो देवगण पूजे भक्ति प्रमाण।

ते सब जावहुं कृपा कर अपने-अपने थान॥

इसके आधार पर जो भी देव हमने आमंत्रित किए हैं, वे अपने-अपने स्थान जाएं, ऐसा निवेदन पूर्वक कह रहे हैं। इसमें स्पष्ट हो रहा है कि हम जिनेन्द्र देव की तो बात नहीं कर रहे हैं। हम अन्य देव लोग, जो इस पूजन में सम्मिलित हुए उनकी बात कर रहे हैं।

यह दोहा प्रतिष्ठा आदि ग्रन्थों से लिया गया है। अर्थात् यह प्रतिष्ठा के समय पढ़ते हैं। क्योंकि प्रतिष्ठा में दिक्पालों का आह्वान करते एवं उन्हें विदाई विसर्जन के रूप में देते हैं। परंतु नित्य-पूजन में यह प्रक्रिया नहीं होती। पूजन में हुई त्रुटियों की क्षमा-याचना आदि विसर्जन में की जाती है।

द्वितीय कथन -

श्रद्धा से आराध्य पद, पूजे भक्ति प्रमाण।

पूजा विसर्जन मैं करूँ, सदा करो कल्याण॥

इस दोहे के अनुसार स्पष्ट हो रहा है कि हम जिनेन्द्र भगवान से आशीर्वाद प्रदान करने हेतु भाव कर रहे हैं और अपनी पूजन को समाप्त करने की आज्ञा चाह रहे हैं।

इसके पश्चात् एक मंत्र और प्राप्त होता है -

- ओं हां ह्रीं हूं हौं हः असि आ उ सा अर्हदादि-परमेष्ठिनः पूजाविधिविसर्जनं करोमि।
- मम अपराध-क्षमापणं भवतु। यः यः यः। अथवा जः जः जः (यः/जः विसर्जन बीजाक्षर है - मंगलमंत्र णमोकार एक अनुचिंतन)

विसर्जन का अभिप्राय पूजा के समापन से है, देवताओं या तीर्थंकरों के विसर्जन से नहीं। पूर्व में पूजन का संकल्प पंचमहागुरुभक्ति से करके सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति पूर्वक पूजन करते हुए अंत में शांति और समाधिभक्ति पूर्वक पूजन को पूर्ण करते हैं। पूजन अनुष्ठान क्रिया में होने वाली त्रुटियों, असावधानियों/अज्ञानता के लिए प्रभु चरणों में क्षमायाचना करके मंत्र पूर्वक ठोने पर पुष्प क्षेपण करके पूजन का विसर्जन करना चाहिए।

-मुनि क्षमासागर जी महाराज

शांतिपाठ - शांति पाठ में सर्वभूत हित कामना की जाती है। पूजक को मात्र अपने कल्याण के उद्देश्य के लिए ही पूजन नहीं करना चाहिए। अपितु सृष्टि के समस्त प्राणियों के हित का भी भाव होना चाहिए। अपने कल्याण के साथ-साथ समस्त जीवों का कल्याण जिसमें निहित हो वही सच्ची प्रार्थना या पूजा होती है। शांति पाठ में विश्व में सर्वत्र शांति सुख की कामना है। इसे विसर्जन के उपरांत बोलते हैं। समस्त सृष्टि की शांति कल्याण आदि की भावना से ओत-प्रोत काव्य को शांति पाठ कहते हैं। पूजन समाप्त करने के उपरांत यदि समय हो तो शास्त्र का वाचन, पठन करें। यदि समय कम हो तो जाप, ध्यान आदि तो करना ही चाहिए।

अंगसहित पूजन का फल - आचार्यश्री वसुनंदी जी महाराज श्रावकाचार में कहते हैं -

जलधारणिक्रवेण पावमलसोहणं हवे णिय।
चंदणवेवेण णरो जावइ सोहगसंपण्णो। 483।
जायइ अक्खयणिहि-रयणसामियो अक्खएहि अक्खोहो।
अक्खीणलद्धिजुत्तो अक्खयसोक्खं च पावेइ। 484।
कुसुमेहिं कुसेसयवयणु तरुणीजणजयण कुसुमवरमाला।
बलएणच्चियदेहो जयइ कुसुमाउहो चेव। 485।

जायइ णिवि-ज्जदाणेण सत्तिगो कंति-तेय संपण्णो।
लावण्णजलहिवेलातरंगसंपा-वियसरीरो। 486।
दीवेहिं दीवियासेसजीव-दव्वाइतच्चसब्भावो।
सब्भावजणियकेवलपईवतेएण होइ णरो। 487।
धूवेण सिसिरयर-धवलकित्तिधवलियजयत्तओ पुरिसो।
जायइ फलेहि संपत्तपरम-णिव्वाणसोक्खफलो। 488।
घंटाहिं घंटसद्दाउलेसु पवरच्छराणमज्झमि।
संकीडइ सुरसंघायसेविओ वरविमाणेसु। 489।
छत्तेहिं एयछत्तं भुंजइ पुहवी सवत्तपरिहीणो।
चामरदाणेण तहा विज्जिज्जइ चमरणिवहेहिं। 490।
अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसण-
स्सुवरिं खीरोयजलेण सुरिदप्पसुहदेवेहिं भत्तीए। 491।
विजयपडाएहिं णरो संगाममुहेसु विजइओ होइ।
छक्खंडविजयणाहो णिप्पडिवक्खो जसस्सी य। 499।

पूजन के समय नियम से जिन भगवान के आगे जलधारा के छोड़ने से पापरूपी मैल का संशोधन होता है। चंदन रस के लेप से मनुष्य सौभाग्य से संपन्न होता है। 483।

अक्षतों से पूजा करनेवाला मनुष्य अक्षय नौ निधि और चौदह रत्नों का स्वामी चक्रवर्ती होता है, सदा अक्षोभ और रोग शोक रहित निर्भय रहता है, अक्षीण लब्धि से संपन्न होता है, और अंत में अक्षय मोक्ष सुख को पाता है। 484।

पुष्पों से पूजा करनेवाला मनुष्य कमल के समान सुंदर मुखवाला, तरुणीजनों के नयनों से और पुष्पों की उत्तम मालाओं के समूह से समर्चित देह वाला कामदेव होता है। 485।

नैवेद्य के चढ़ाने से मनुष्य शक्तिमान, कांति और तेज से संपन्न, और सौंदर्य रूपी समुद्र की वेलावर्ती तरंगों से संप्लावित शरीरवाला अर्थात् अति सुंदर होता है। 486।

दीपों से पूजा करनेवाला मनुष्य, सद्भावों के योग से उत्पन्न हुए केवलज्ञानरूपी प्रदीप के तेज से समस्त जीव द्रव्यादि तत्त्वों के रहस्य को प्रकाशित करनेवाला अर्थात् केवलज्ञानी होता है। 487।

धूप से पूजा करनेवाला मनुष्य चंद्रमा के समान त्रैलोक्यव्यापी यशवाला होता है। फलों से पूजा करनेवाला मनुष्य परम निर्वाण का सुखरूप फल पानेवाला होता है। 488।

जिन मंदिर में घंटा समर्पण करनेवाला पुरुष घंटाओं के शब्दों से व्याप्त श्रेष्ठ विमानों में सुर समूह से सेवित होकर अप्सराओं के मध्य क्रीड़ा करता है। 489।

छत्र प्रदान करने से मनुष्य, शत्रु रहित होकर पृथ्वी को एक-छत्र भोगता है। तथा चमरों के दान से चमरों के समूहों द्वारा परिवीजित किया जाता है। जिन भगवान् के अभिषेक करने से मनुष्य सुदर्शन मेरु के ऊपर क्षीर-सागर के जल से सुरेंद्र प्रमुख देवों के द्वारा अभिषिक्त किया जाता है। 491।

जिन मंदिर में विजय पताकाओं के देने से संग्राम के मध्य विजयी होता है तथा षट्खंड का निष्प्रतिपक्ष स्वामी और यशस्वी होता है। 492।

वार्धाराः रजसः शमाय पदयोः, सम्यक्प्रयुक्ताहृतः सद्गंधस्तनुसौरभाय विभवा-च्छेदाय संत्यक्षताः। यष्टुः स्रगदिविजस्रजे चरुरुमा-स्वाम्याय दीपस्त्विवे। धूपो विश्वद्वगुत्सवाय फलमिष्टार्थाय चार्थाय सः। 30।...

नीराद्यैश्चारुकाव्यस्फुरदनणुगुण-ग्रामरज्यन्मनोभि-र्भव्योऽर्चद्विगुविशुद्धिं प्रबलयतु यया, कल्पते तत्प-दाय। 31।

अरहंत भगवान् के चरण कमलों में विधि पूर्वक चढ़ाई गयी जल की धारा पूजक के पापों के नाश करने के लिए, उत्तम चंदन शरीर में सुगंधि के लिए, अक्षत विभूति की स्थिरता के लिए, पुष्पमाला मंदरमाला की प्राप्ति के लिए, नैवेद्य लक्ष्मीपतित्व के लिए, दीप क्रांति के लिए, धूप परम सौभाग्य के लिए, फल इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए और वह अर्घ अनर्घपद की प्राप्ति के लिए होता है। 30।...सुंदर गद्य पद्यात्मक काव्यों द्वारा आश्चर्यान्वित करनेवाले बहुत से गुणों के समूह से मन को प्रसन्न करनेवाले जल चंदनादिक द्रव्यों द्वारा जिनेंद्रदेव को पूजनेवाला भव्य सम्यग्दर्शन की विशुद्धि को पुष्ट करे है, जिस दर्शनविशुद्धि के द्वारा तीर्थंकरपद की प्राप्ति के लिए समर्थ होता है। 31।⁷

उपसंहार - जिनेन्द्र भगवान की पूजा निर्मल परिणामों के साथ करना चाहिए। परिणामों की निर्मलता हो और जैसी प्रक्रिया बताई गई उसका वैसा ही परिपालन हो तो निश्चित ही हम देवपूजा की सार्थकता को ग्रहण कर सकेंगे। इस आलेख में देवपूजा की विधि पर सम्पूर्ण चर्चा की गई है। निश्चित ही देवपूजा के अंग और उनकी अनिवार्यता जानकर हम लोग देवपूजा प्रक्रिया पूर्वक करेंगे। पूजन की सुंदर पंक्तियों में भी कहा भी गया है -

भावों की निर्मल सरिता में अवगाहन करने आया हूं।

⁷ सागार धर्माभूत/2/30-31